'नानापुराणनिगमागमसम्मतं यत्'

[वेद और गोस्वामी तुलसीदास]

गोस्वामी तुलसीदासजीने '**नानापुराणनिगमागमसम्मतं०**' का जो मञ्जुल उद्घोष प्रतिज्ञाके रूपमें किया था, उसका पूर्ण निर्वाह उन्होंने मानस तथा अपने अन्य ग्रन्थोंमें आदिसे अन्ततक किया है। मानसका प्रारम्भ वाणी और विनायककी प्रार्थनासे हुआ है। अथर्ववेदके अन्तर्गत '**श्रीदेव्यथर्वशीर्ष**' में कामधेनुतुल्य भक्तोंको आनन्द देनेवाली, अन्नबलसे समृद्ध करनेवाली माँ वाग्रूपिणी भगवतीकी उत्तम स्तुति है तथा वेदोंमें '**गणानां त्वा गणपतिः हवामहे**' से गणेशजीकी वन्दना है, जो मङ्गलमूर्ति एवं विघ्नविनाशक हैं। उसी शाश्वत दिव्य परम्पराका पालन '**वन्दे वाणीविनायकौ**' से तुलसीदासजीने किया है। भगवान् शिव एवं उमा वैदिक देवता हैं। '**श्रद्धा-विश्वासरूपिणौ**' के रूपमें उन्हें प्रणाम किया है, क्योंकि बिना श्रद्धा और विश्वासके भक्त हृदयमें ईश्वरका दर्शन नहीं कर सकता। श्रद्धाको धर्मकी पुत्री कहा गया है। विश्वास हमारी शुभ निश्चयात्मिका दृढ़ मनोवृत्ति है, जो हमें शिवत्व प्रदान कराती है। '***कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा***' एवं '***श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई***' तुलसीदासजीकी उक्ति है।

मानसके प्रारम्भकी चौपाई मृत्युञ्जय-मन्त्रका अनुस्मरण एवं भावानुवाद ही है—

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥

(यजुर्वेद ३। ६०)

अर्थात् हम लोग भगवान् शिवकी उपासना करते हैं, वे हमारे जीवनमें सुगन्धि (यश, सदाशयता) एवं पुष्टि (शक्ति, समर्थता)-का प्रत्यक्ष बोध करानेवाले हैं। जिस प्रकार पका हुआ फल ककड़ी, खरबूजा आदि स्वयं डंठलसे अलग हो जाता है, उसी प्रकार हम मृत्यु-भयसे सहज मुक्त हों, किंतु अमृतत्वसे दूर न हों।

इस महामन्त्रकी छाया '***बंदउँ गुरु पद पदुम परागा***' आदि चौपाइयोंमें भी द्रष्टव्य है।

'**त्र्यम्बकं यजामहे**' से गुरुको शंकररूप माना है—'**वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम्।**' '**सुगन्धिम्**' से '**सुरुचि सुबास**' माना है अर्थात् हमारी सुन्दर रुचि ही सुबास-सुगन्धि है। भ्रमर रुचिके कारण ही परागसे कमल-रसका पान करता है। '**पुष्टिवर्धनम्**' का अर्थ '***सरस अनुरागा***' किया है अर्थात् हृदयमें श्रेष्ठ अनुराग सुरुचिके कारण ही उत्पन्न होता है, जिससे हृदय पुष्ट होता है। इसकी पुष्टिमें कहा गया है—'**नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः**' तात्पर्य यह कि बल रहनेपर ही आत्माका बोध होता है। गुरुका चरण '***अमिअ मूरि***' (अमृतलताकी जड़ी) है, जिसमें रज लगा है; वह अमृतदायिनी है। मृत्युके बन्धनको छुड़ाने-हेतु रोग-निवारणमें पूर्ण सक्षम है, ऐसे शंकररूप गुरुकी मैं वन्दना करता हूँ।

वैदिक ऋषियोंकी प्रार्थना है—'**असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय।**'

अर्थात् हे प्रभो! आप मुझे असत्से सत्की ओर ले चलें। अन्धकारसे प्रकाशकी ओर ले चलें, मृत्युसे अमरताकी ओर ले चलें। इसका भाव-रूपान्तर गुरु-वन्दना-प्रकरणमें सुन्दर एवं मार्मिक ढंगसे किया गया है। असत् तथा तमस् एवं मृत्युसे बचनेकी तथा मुक्ति-प्राप्तिकी प्रार्थना की गयी है। असत् दूर होता है—सत्से, '***सतसंगत मुद मंगल मूला***', '***बिनु सतसंग बिबेक न होई***'। तमस्—अन्धकार अर्थात् अज्ञान दूर होता है श्रीगुरुचरण-नखमणिकी ज्योतिसे, वन्दनासे, प्रार्थनासे—'***अमिअ मूरिमय चूरन चारू***' गुरुके इस अमृत मूरि-चरण-रजसे अमृत-प्रकाशकी उपलब्धि भक्तको सहज ही हो जाती है। तुलसीदासजीने वेदोंकी वन्दना की है—

बंदउँ चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस।
जिन्हहि न सपनेहुँ खेद बरनत रघुबर बिसद जसु॥

(रा०च०मा० १। १४ (ङ))

अर्थात् मैं चारों वेदोंकी वन्दना करता हूँ, जो संसार-समुद्रके पार होनेके लिये जहाजके समान हैं। जिन्हें रघुनाथजीका निर्मल यश वर्णन करते स्वप्नमें भी खेद नहीं होता।

वेद ब्रह्माजीके मुखसे प्रकट हुए। श्रीवाल्मीकिजीके मुखसे रामायण प्रकट हुआ। वेदार्थ ही रामायणके रूपमें

प्रकट हुआ। श्रुतिका वचन है—'**तरति शोकमात्मवित्**'—अर्थात् आत्मज्ञ शोक-समुद्रसे पार हो जाता है। तुलसीदासजी अपनेको शोक-समुद्रसे पार होनेके लिये कहते हैं—

निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भव सरिता तरनी॥

अर्थात् मैं अपने संदेह तथा मोह एवं भ्रमको दूर करने-हेतु रामकथाका वर्णन करता हूँ। अन्यत्र हनुमन्नाटकमें भी रामकथाको '**विश्रामस्थानमेकम्**' कहा गया है। तुलसीदासजीने '**बुध बिश्राम सकल जन रंजनि**' कहा है। राम संसारकी आत्मा हैं। जैसे प्रणव वेदोंकी आत्मा है, उसी प्रकार राम भी वेदोंके आत्मारूप हैं—

बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो॥

(रा०च०मा० १। १९। २)

वेदोंमें निर्गुण-निराकार ब्रह्मकी उपासना है। आगे चलकर मनु-शतरूपाको ज्ञानमार्गसे निर्गुण-निराकार-उपासनासे तृप्ति नहीं हुई तो उन्होंने तप किया। दृढ़ होकर घोर तप करनेके बाद वे कल्पना करने लगे—

उर अभिलाष निरंतर होई। देखिअ नयन परम प्रभु सोई॥
अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथबादी॥
नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा॥
संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीलातनु गहई॥
जौं यह बचन सत्य श्रुति भाषा। तौ हमार पूजिहि अभिलाषा॥

(रा०च०मा० १। १४४। ३—८)

मनु एवं शतरूपाकी उत्कट तपस्या निर्गुण ब्रह्मको सगुण-साकार रूपमें प्रकट करनेके उद्देश्यसे हुई थी। जिस निर्गुण ब्रह्मका निरूपण उपनिषदोंमें है—

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं
तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत्।

(कठ० १। ३। १५)

अर्थात् ब्रह्म शब्दरहित, स्पर्शरहित, रूपरहित, रसरहित और बिना गन्धवाला है। श्रीरामचरितमानसमें निर्गुण ब्रह्मके बारेमें वर्णन आया है—

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद पर धामा॥
ब्यापक बिस्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥
सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी॥

(रा०च०मा० १। १३। ३—५)

मनुजीने ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओंके वर प्रदानकी उपेक्षा कर अन्तमें सबके परम कारण सर्वज्ञ ब्रह्मका साक्षात्कार किया तथा उनसे ब्रह्मके समान पुत्रकी अभिलाषा की, जिससे स्वयं सर्वज्ञ ब्रह्मको रामरूपमें अवतरित होना पड़ा। मनु-शतरूपा ही दूसरे जन्ममें दशरथ-कौसल्याके रूपमें प्रकट हुए थे, जिनके यहाँ ब्रह्मको बालकरूप धारण कर बालक्रीडा करनी पड़ी तथा गृहस्थ बनकर आदर्श जीवन-चरित, जो वेदानुकूल था, प्रस्तुत करना पड़ा। जिसका सुन्दर मनोहारी वर्णन तुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानसमें किया है। जिसका आधार वेद-पुराण है—

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। बेद पुरान उदधि घन साधू॥
बरषहिं राम सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी॥

(रा०च०मा० १। ३६। ३-४)

भगवान् श्रीरामके जन्मके पूर्व वेदधर्मके विरुद्ध आचरण करनेवाले रावण तथा कुम्भकर्ण आदिका जन्म हो चुका था। रावण हिंसाप्राय अत्याचारमें लिप्त था, उसके सभी कार्य वेद-विरुद्ध थे—

जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला॥
जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं॥
सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई॥
नहिं हरिभगति जग्य तप ग्याना। सपनेहुँ सुनिअ न बेद पुराना॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥

इस प्रकार अधर्मपूर्ण कार्योंको देखकर पृथ्वी बहुत दुःखित हुई। उसने कहा—

गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही॥

पृथ्वी गौका रूप धारण करके देवताओंके यहाँ गयी, फिर उसके साथ सभी देवता ब्रह्माजीके पास गये। पृथ्वीने अपना दुःख सबको सुनाया। भगवान् शिवने पृथ्वी और देवताओंकी दशाको जानकर भगवान् विष्णुसे प्रार्थना करनेको कहा। भगवान् प्रेमसे पुकारनेपर भक्तोंकी प्रार्थना सुनते हैं और उनके दुःखको दूर करते हैं। शिवजीने एक सूत्रमें सबको समझाया—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥

(रा०च०मा० १। १८५। ५, ७)

आकाशवाणी हुई, जिसमें पूर्वमें दिये हुए कश्यप-अदितिके वरदानका स्मरण दिलाया गया और समय आनेपर प्रभुके अवतरित होनेका विश्वास दिलाया गया।

बहुत दिनोंतक कोई संतान न होनेसे दशरथ एवं कौसल्याजी अत्यन्त चिन्तित थे। उन्होंने गुरु वसिष्ठसे पुत्र-प्राप्तिकी कामना व्यक्त की। वसिष्ठजीने पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया। अग्निदेव हाथमें चरु लेकर प्रकट हुए। अग्निदेवके हविके प्रसादसे भगवान् भाइयोंसहित अवतरित हुए। अग्नि-उपासना वैदिक उपासना है। ऋग्वेदके प्रथम मन्त्रमें अग्निदेवकी प्रार्थना मनोरथ पूर्ण करने-हेतु है। वेदके '**सं गच्छध्वम्, सं वदध्वम्**' का पालन भगवान् राम भाइयों एवं अवधपुरके बालकोंके साथ क्रीडा एवं भोजन आदिके समय भी करते हैं। विश्वामित्रके साथ उनकी यज्ञ-रक्षा-हेतु जाते हैं। वहाँसे जनकपुर धनुष-यज्ञ देखने जाते हैं। वहाँ उनके रूपको देखकर जनकजी-जैसे ज्ञानी भी विमोहित हो जाते हैं। विश्वामित्रजीसे पूछते हैं—

ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा॥

(रा०च०मा० १। २१६। २)

अर्थात् जिसका वेदोंने 'नेति-नेति' कहकर वर्णन किया है, कहीं वह ब्रह्म युगलरूप धारण करके तो नहीं आया है? क्योंकि—

सहज बिरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥
इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥

(रा०च०मा० १। २१६। ३, ५)

—मेरा मन जो स्वभावसे ही वैराग्यरूप है, इन्हें देखकर इस तरह मुग्ध हो रहा है, जैसे चन्द्रमाको देखकर चकोर। इनको देखते ही अत्यन्त प्रेमके वश होकर मेरे मनने हठात् ब्रह्मसुखको त्याग दिया है।

जनकजीके प्रश्नोंको सुनकर मुनिने हँसकर उत्तर दिया कि जगत्में जितने भी प्राणी हैं, ये सभीको प्रिय हैं। 'ये सभीको प्रिय हैं'—यह कहकर मानो मुनिजीने संकेत कर दिया कि ये सबके प्रिय अर्थात् सबके आत्मा हैं। सर्वप्रियता, चारुता, दयालुता, गुण-दोष न देखना, अस्पृहा, निर्लोभता—ये सब आत्माके गुण हैं। भगवान् राम इन सद्गुणोंके भण्डार हैं। भगवान् राम एवं लक्ष्मण गुरुजीके साथ नियम-धर्मका पालन करते हैं। संध्याकालमें संध्या-वन्दन करते हैं—

बिगत दिवसु गुरु आयसु पाई। संध्या करन चले दोउ भाई॥

वेदोंकी आज्ञा है—'**अहरहः संध्यामुपासीत।**' प्रतिदिन संध्या करो। अपने मूल उत्स ईश्वरको सदा स्मरण रखो। वेद सदा ईश्वर-उपासनाके लिये बल देता है। जिसके लिये संयम-नियमका पालन आवश्यक है। तुलसीदासजीने भी कहा है—

सम जम नियम फूल फल ग्याना। हरि पद रति रस बेद बखाना॥

(रा०च०मा० १। ३७। १४)

भक्तके लिये मनका निग्रह—यम-नियम ही फूल हैं, ज्ञान फल है और श्रीहरिके चरणोंमें प्रेम ही इस ज्ञानरूपी फलका रस है। ऐसा वेदोंने कहा है।

जप, तप, नियम, उपासना—ये सब हमारी भारतीय संस्कृतिके अङ्ग हैं। नारदजीने शिवको वरण करनेके लिये पार्वतीको तप करनेकी प्रेरणा की थी। श्रीरामचरितमानसमें कथन है—

इच्छित फल बिनु सिव अवराधें। लहिअ न कोटि जोग जप साधें॥
जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥

पार्वतीजीने घोर तपस्या की। भगवान्की प्राप्ति हुई। राम-कथाके बारेमें पार्वतीजीने बीस प्रश्न किये, भगवान्ने सबका समाधान किया। वेद-मतका समर्थन करते हुए कहा—

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥

(रा० च० मा० १। ११८। ५—७)

—यह श्वेताश्वतरोपनिषद् (३। १९)-के निम्न मन्त्रका भावानुवाद है—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥

अर्थात् वह परमात्मा हाथ-पैरसे रहित होकर भी समस्त वस्तुओंको ग्रहण करनेवाला है। वेगपूर्वक सर्वत्र गमन करनेवाला है। आँखोंके बिना सब कुछ देखता है। कानोंके बिना ही सब कुछ सुनता है। वह जो कुछ भी जाननेमें आनेवाली वस्तुएँ हैं, उन सबको जानता है; परंतु उसको जाननेवाला कोई नहीं है। ज्ञानी पुरुष उसे महान् आदि पुरुष कहते हैं।

मनु-शतरूपाजीने भी घोर तपस्या की थी। तप-कालमें शुद्ध-सात्त्विक जीवन-आचरणका विधान है—

करहिं अहार साक फल कंदा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानंदा॥

(रा०च०मा० १। १४४। १)

'ईशा वास्यमिदः सर्वं०' का बोध परम आवश्यक है। काकभुशुण्डिजीने ***'ईस्वर सर्ब भूतमय अहई'*** का ज्ञान तपके बाद ही प्राप्त किया, जब उनकी सारी वासनाएँ निर्मूल हुईं; क्योंकि वासनाएँ हमारी शक्ति—ऊर्जा एवं तेजको क्षीण कर देती हैं।

'छूटी त्रिबिधि ईषना गाढ़ी' तब भगवान्‌में प्रीति हुई। वेदोंमें भगवान्‌के विराट्-रूपका वर्णन है। पुरुषसूक्तमें वर्णन है—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।

(ऋग्वेद १०। ९०। १)

अर्थात् वह विराट् पुरुष सहस्र सिरों, सहस्र आँखों और सहस्र चरणोंवाला है।

इस विराट्-रूपका दर्शन माँ कौसल्याको हुआ था—

ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै॥

अर्थात् वेद कहते हैं कि तुम्हारे प्रत्येक रोममें मायाके रचे हुए अनेक ब्रह्माण्डोंके समूह हैं। वे ही तुम मेरे गर्भमें रहे—इस हँसीकी बात सुननेपर धीर (विवेकी) पुरुषोंकी बुद्धि भी स्थिर नहीं रहती, विचलित हो जाती है।

इसी विराट्-रूपका दर्शन जनकपुरकी रंगभूमिमें जनकपुरवासियों एवं वहाँ पधारे हुए राजाओंको हुआ—

बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा॥
जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा॥

अर्थात् विद्वानोंको प्रभु विराट्-रूपमें दिखायी दिये, जिनके बहुत-से मुँह, हाथ, पैर, नेत्र और सिर हैं। योगियोंको वे शान्त, शुद्ध, सम और स्वत:प्रकाश परम तत्त्वके रूपमें दिखे।

मन्दोदरीने इसी पुरुषसूक्तके विराट्-रूपका वर्णन रावणसे किया था—

बिस्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु॥

× × ×

अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान॥

(रा०च०मा० ६। १४, १५ (क))

अर्थात् रघुकुलके शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी विश्वरूप हैं। वेद जिनके अङ्ग-अङ्गमें लोकोंकी कल्पना करते हैं। शिव जिनके अहंकार हैं, ब्रह्मा बुद्धि हैं, चन्द्रमा मन हैं और महान् विष्णु ही चित्त हैं। उन्हीं चराचररूप भगवान् श्रीरामजीने मनुष्यरूपमें निवास किया है।

काकभुशुण्डिजीने भी इसी विराट्-रूपका दर्शन किया था।

श्रीरामचरितमानस शिवजीका प्रसाद है। माता पार्वतीजीने शिवजीसे ***'श्रुति सिद्धांत निचोरि'*** कहकर रामकथा कहनेकी प्रार्थना की थी। उसी सकल लोक-हितकारी गङ्गाजीके समान सबको पवित्र करनेवाली कथाको भगवान् शिवजीने कृपा करके पार्वतीजीको सुनाया था। शिवजीने कहा था—पहले इन्द्रियोंको शुद्ध करो। अन्तर्मुखी बनो। श्रवण अज्ञात-ज्ञापक हैं। श्रवणके द्वारा ही कथाका प्रवेश होता है। मन और हृदय पवित्र होता है। यदि कानसे कथा न सुनी गयी तो वह कान साँपका बिल बन जायगा। साँपकी उपमा कामसे दी जाती है। काम—भुजंग यदि कानमें प्रवेश करेंगे तो आसुरी वृत्तियाँ हृदय और मनमें अपनी जड़ें जमा लेंगी। मनुष्यके हृदयमें दैवी एवं आसुरी सम्पदाओंका निवास है। दैवी सम्पदा मोक्ष—श्रेय-मार्गका अनुसरण करती हैं। आसुरी सम्पत्तिके लोग नरककी ओर मुड़ते हैं। इन्द्रियोंकी उपमा घोड़ोंसे दी गयी है। लङ्काकाण्डमें कठोपनिषद् श्रुति-समर्थित धर्मरथकी चर्चामें भगवान्‌ने कहा है कि—

बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥

(रा०च०मा० ६। ८०। ६)

हमारी इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी हों, बल-विवेक-दम और परहित-रूपी घोड़े क्षमा, दया और समतारूपी रज्जुसे जुड़े हों, तब रथ सन्मार्गपर—विकासके मार्गपर आगे बढ़ता है।

ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना॥

(रा०च०मा० ६। ८०। ७)

चतुर सारथिको ईश-भजनसे प्रेरणा मिलेगी। वैराग्यकी ढालसे संतोषरूपी कृपाणके द्वारा वह शत्रुओंका संहार करता हुआ श्रेय-पथपर आगे बढ़ता जायगा। परंतु जो आसुरी चरित्रवाला है, वह इन्द्रिय-सुखके कारण प्रेय-मार्गमें भटक जायगा। नरककी ओर मुड़ जायगा। अपना विनाश कर लेगा। आत्मघाती बनेगा। इसीको यजुर्वेद (४०। ३)-में इस प्रकार कहा गया है—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
ताꣳ स्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

अर्थात् आत्मघाती मनुष्य चाहे कोई भी क्यों न हो, मरनेके बाद वह असुरोंके लोकोंमें निवास करता है, जो घोर अज्ञानान्धकारसे आच्छादित है। तुलसीदासजीने भी यही बात कही है—

करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥
जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

(रा०च०मा० ७। ४४। ८; ७। ४४)

हमारे कान भगवान्‌की कथा सुनें। जिह्वा हरिनाम रटे। नेत्रोंसे संतोंका दर्शन हो। गुरु और भगवान्‌के सामने हम शीश झुकाएँ। हम भद्र पुरुष बनें। वेद-मन्त्र इसीको ग्रहण करनेका आदेश देता है—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥

(यजु० २५। २१)

अर्थात् हम सदैव कल्याणकारी शब्द ही कानोंसे सुनें, कल्याणकारी दृश्य ही आँखोंसे देखें और अपने दृढ़ अङ्गोंके द्वारा शरीरसे यावज्जीवन वही कर्म करें, जिससे विद्वानोंका हित हो। इन्द्रियोंको सत्कर्मकी ओर लगानेसे मन भगवान्‌से जुड़ जाता है। हम शक्तिसम्पन्न बनते हैं।

चित्रकूटकी सभामें वसिष्ठजीने भगवान् रामसे कहा था कि—

भरत बिनय सादर सुनिअ करिअ बिचारु बहोरि।
करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि॥

अर्थात् पहले भरतजीकी विनती आदरपूर्वक सुन लीजिये, फिर उसपर विचार कीजिये, तब साधुमत, लोकमत, राजनीति और वेदोंका निचोड़ निकाल कर वैसा ही कीजिये।

भगवान् रामने अन्तमें सार-तत्त्वकी शिक्षा दी—

मातु पिता गुर स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू॥
सो तुम्ह करहु करावहु मोहू। तात तरनिकुल पालक होहू॥

(रा० च० मा० २। ३०६। २-३)

वेदोंकी शिक्षा '**मातृदेवो भव' पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव।**' का पूर्ण पालन करनेकी आज्ञा दी।

वेदोंमें वर्णित विद्या-अविद्याकी व्याख्या लक्ष्मणजीके ज्ञान, वैराग्य एवं भक्तिके प्रसंगमें द्रष्टव्य है। भगवान् श्रीरामने श्रीलक्ष्मणजीके समक्ष अरण्यमें विद्या और अविद्याकी साङ्गोपाङ्ग व्याख्या की है। जब लक्ष्मणजीने पूछा—

ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ।
जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ॥

(रा०च०मा० ३। १४)

तब भगवान्‌ने समाधान किया—

माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव।
बंध मोच्छ प्रद सर्बपर माया प्रेरक सीव॥

(रा०च०मा० ३। १५)

तुलसी-साहित्यमें 'मानस' एवं 'विनय-पत्रिका' विशेषरूपसे जन-जनका कण्ठहार बन गया है। वैसे उनके सभी द्वादश ग्रन्थ ज्ञान-भक्तिभाव-सम्पन्न हैं, उनका अध्ययन भी होता है। अतः—***'को बड़ छोट कहत अपराधू।'***

तुलसीदासजीने अपनी रचनाओंमें सर्वत्र वेदोंके यज्ञिय संस्कृतिकी रक्षा की है। जैसे—ऋषियोंके आश्रमोंमें जाना तथा लङ्का-विजय एवं सिंहासनारूढ होनेपर सर्वत्र ऋषियोंको पूर्ण आदरके साथ सम्मान देना आदि।

अन्तमें तुलसीदासजीकी ज्योतिष्मती प्रज्ञाको प्रणाम है, जिन्होंने साधारणजनके स्वर-में-स्वर मिलाकर भगवान्‌को प्रणाम किया—

मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर॥

(रा०च०मा० ७। १३० (क))

तुलसीदासजी वेदोंके निष्णात पारंगत विद्वान् थे। वेदके विद्वानोंको जो लाभ वेदोंके अध्ययनसे प्राप्त होता है, वही फल तुलसी-साहित्यके अध्ययन करनेवालेको प्राप्त होता है। तुलसीदासजीरचित द्वादश ग्रन्थ भक्तोंके लिये कामतरु एवं कामधेनुके समान हैं। यही कारण है कि श्रीरामचरितमानस, विनय-पत्रिका आदि ग्रन्थोंका पठन-पाठन झोपड़ीसे लेकर महलोंतक, साधारणजनसे लेकर विद्वान्‌तक समान श्रद्धा-भावसे करते हैं। वेदोंके (अर्थ बोधके) साथ मनोयोगपूर्वक तुलसी-साहित्यके अध्ययन एवं आचरणसे अध्येताको लोक-सुयश एवं परलोकमें सद्‌गति अवश्य मिलेगी, ऐसा हम सबको पूर्ण विश्वास है।

(डॉ० श्रीओ३म्प्रकाशजी द्विवेदी)

तुलसी-साहित्य और वेद

(श्रीरामपदारथ सिंहजी)

वेद सभ्यता और संस्कृतिका केन्द्र है। काव्यमीमांसाकार श्रीराजशेखरजीने ठीक ही कहा है कि 'उस श्रुतिको प्रणाम है, जिसका मन्त्रद्रष्टा ऋषि, शास्त्रकार और कविजन पद-पदपर आश्रय ग्रहण करते हैं'—

नमोऽस्तु तस्यै श्रुतये यां दुहन्ति पदे पदे।
ऋषयः शास्त्रकाराश्च कवयश्च यथामति॥

विश्वके साहित्यमें अनुपम स्थान रखनेवाला गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीका साहित्य भी वेदोंके अवदानपर अवलम्बित है। उनके साहित्यका वर्ण्य-विषय भगवान् श्रीरामका सुयश है, जो वेदमूलक है। अपने साहित्यके वर्ण्य-विषयकी वेदमूलकताकी बात स्वयं कविने श्रीरामचरितमानसकी उत्पत्ति, स्वरूप और उसके प्रचारके प्रसंगका वर्णन करते हुए कही है—

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। बेद पुरान उदधि घन साधू॥
बरषहिं राम सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी॥

× × ×

मेधा महि गत सो जल पावन। सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना॥

× × ×

अस मानस मानस चख चाही। भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही॥
भयउ हृदयँ आनंद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू॥
चली सुभग कबिता सरिता सो। राम बिमल जस जल भरिता सो॥

(रा०च०मा० १। ३६। ३-४, ८-९; १। ३९। ९—११)

श्रीरामचरितमानसमें विन्यस्त बृहद् रूपकसे उद्धृत इस संक्षिप्तांशका सारांश यह है कि गोस्वामीजीके मनमें श्रीरामचरितमानसरूपी सरोवरका निर्माण साधु-मुखसे वेद-पुराणोंकी कथाएँ सुननेसे ही हुआ। उसकी मानसिक रचना हो जानेपर कविने मनकी आँखोंसे उसका अवलोकन किया और बुद्धिको उसमें अवगाहन कराया अर्थात् कविने श्रवणोपरान्त मन-बुद्धिसे क्रमशः मनन और निदिध्यासन किया। कविकी बुद्धि श्रीराम-सुयशरूपी मधुर, मनोहर, मङ्गलकारी वर-वारिमें गोता लगानेसे निर्मल हो गयी। उनके मनमें आनन्दोत्साहका उद्रेक हुआ, प्रेम और प्रमोदकी बाढ़ आ गयी, जिससे श्रीराम-सुयशरूपी जलवाली कविता-सरिता बह चली। यथार्थतः जब वेदार्थका मनन किया जाता है, तब वह श्रीरामचरितरूपमें परिणत हो जाता है। इसीलिये कहा गया है—

'वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना।'

गोस्वामीजीकी भी समाधिलीन बुद्धिमें वेदार्थ श्रीरामचरितरूपमें झलक उठा। उनकी उक्तिसे सिद्ध होता है कि उनके साहित्यके वर्ण्य-विषयका स्रोत वेद-पुराण हैं। पुराण वेदोंके उपबृंहण हैं, इसलिये यह कहना अनुचित नहीं कि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके साहित्यका मुख्य स्रोत वेद ही है।

सम्भवतः वेदोंके अमूल्य अवदानके कारण ही गोस्वामीजीके सभी ग्रन्थोंमें वेदोंके प्रति अपार आदर अर्पित किया गया है। श्रीरामचरितमानसमें महाकविकी वेद-वन्दना अवलोकनीय है—

बंदउँ चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस।
जिन्हहि न सपनेहुँ खेद बरनत रघुबर बिसद जसु॥

(रा० च० मा० १। १४ ङ)

प्रस्तुत सोरठामें वेदोंकी वन्दनाके साथ वेदविषयक तीन महत्त्वपूर्ण बातें हैं—(१) वेद चार हैं, (२) वेद भववारिधिके लिये जहाजके समान हैं और (३) वेद श्रीरघुनाथजीके निर्मल यशका वर्णन करते स्वप्नमें भी नहीं थकते। इन बातोंमें वेदोंकी संख्या, स्वरूप तथा उनके स्वभावके सूचक सारगर्भित सूत्र संनिविष्ट हैं।

वेद अनन्त हैं—'**अनन्ता वै वेदाः**।' वे मन्त्र-रचनाकी दृष्टिसे पद्यात्मक, गद्यात्मक और गेय तीन प्रकारके हैं, जो क्रमशः ऋक्, यजुः और साम कहे जाते हैं। पहले तीनोंका मिला-जुला संग्रह था। द्विज उसे याद करके वैदिक सिद्धान्तोंकी प्रयोगशालारूप यज्ञमें प्रयोग करते थे। काल-प्रभावसे लोगोंकी धारणाशक्ति क्षीण होने लगी। अतः जब वेदके मिले-जुले सम्पूर्ण संग्रहको याद करना कठिन लगने लगा, तब भगवान् वेदव्यासने कृपा करके यज्ञमें काम करनेवाले होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा नामक चार ऋत्विजोंकी सुविधाके लिये वेदोंका चार भागोंमें विभाजन किया, जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेदकी चार संहिताओं तथा चारोंके ब्राह्मण-ग्रन्थोंके रूपमें विद्यमान हैं। अतः वेद रचनाकी दृष्टिसे तीन और व्यवहारकी दृष्टिसे चार हैं।

श्रीरामचरितमानसमें भगवान् वेदव्यासके व्यावहारिक वर्गीकरणको महत्त्वपूर्ण मानकर कहा गया है—*'बंदउँ चारिउ बेद'*। वेदोंकी चार संख्याका दृढ़तापूर्वक उल्लेख करके उनकी वन्दना करनेका अभिप्राय यह है कि वेद चार हैं और चारों समानभावसे वन्दनीय हैं। यहाँ संकेत है कि चौथा वेद अथर्ववेद भी अनादि वेद है। वह स्वतन्त्र होते हुए भी वेदत्रयीके अन्तर्गत ही है।

'भव बारिधि बोहित सरिस'—इस उल्लिखित सोरठाका यह चरण वेदोंका स्वरूप-ज्ञापक सूत्र है। वेदोंको संसार-सागरके लिये जहाज कहनेका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार जहाजपर चढ़कर यात्रा करनेवाले लोग महासागरोंको भी पार कर जाते हैं, उसी प्रकार जन्म-मरणकी अविच्छिन्न परम्परारूप संसार-सागरको वे लोग अनायास पार कर जाते हैं, जो वेद-प्रतिपादित ज्ञान-कर्मोपासनापर आरूढ हो जीवन-यात्रा करते हैं। ऐसा होनेका कारण यह है कि वेद सामान्य शब्द-राशि नहीं हैं, वे श्रीभगवान्‌की निज वाणी हैं—*'निगम निज बानी'* (रा०च०मा० ६। १५। ४) और उनके सहज श्वास हैं—*'जाकी सहज स्वास श्रुति चारी'* (रा०च०मा० १। २०४। ५)। अतः वेद परम प्रमाण और अपौरुषेय हैं। अपौरुषेय होनेसे उनमें जीव-सम्भव राग-द्वेष नहीं हैं। राग-द्वेषसे पक्षपात पैदा होता है। वेद-वचन बिलकुल निष्पक्ष है। अतएव उनमें जगत्‌का उद्धार करनेकी शक्ति निहित है। इसीलिये कहा गया कि राग-द्वेषरहित जन उद्धारक होते हैं—

सो जन जगत जहाज है, जाके राग न दोष।

(वैराग्य-संदीपनी १६)

जैसे जहाजका कोई-न-कोई संचालक होता है, वैसे ही शब्दसमूहरूप वेदोंके भी अभिमानी देवता हैं, जो काम-रूप हैं। उनकी अव्याहत गति है। श्रीरामचरितमानसमें वर्णित है कि वेदभगवान् श्रीसीतारामके विवाहके अवसरपर विप्रवेषमें जनकपुरमें आकर विवाहकी विधियाँ बताते हैं—*'बिप्र बेष धरि बेद सब कहि बिबाह बिधि देहिं॥'* (रा०च०मा०१। ३२३) और श्रीरामराज्याभिषेकके समय वन्दीवेषमें विनती करने अयोध्या पहुँच जाते हैं—*'बंदी बेष बेद तब आए जहँ श्रीराम॥'* (रा०च०मा० ७। १२ (ख)। इन बातोंसे यह भी विदित होता है कि वेदोंके अभिमानी देवता वैदिक विधिके निर्वाहकोंके लिये सहायक-स्वरूप हैं।

वेदोंको श्रीरघुनाथजीके निर्मल यशका वर्णन करते स्वप्नमें भी खेद नहीं होता। यह कथन वेदोंका स्वभाव दर्शाता है। सम्पूर्ण वेदोंका मुख्य तात्पर्य परात्पर ब्रह्म श्रीभगवान्‌में ही है। यह तथ्य श्रुति-स्मृतियोंमें अनेकत्र उल्लिखित है, यथा—**'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः'** (गीता १५। १५), **'सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति'** (कठोप० १। २। १५)। श्रीभगवान् ही वेद-प्रतिपादित सम्पूर्ण ज्ञान-कर्मोपासनाद्वारा प्रधानतः प्राप्तव्य हैं। वेदोंमें वर्णित ब्रह्मेन्द्रादि अनेक नाम उन्हींके हैं। प्रमाणके लिये यजुर्वेदका एक मन्त्र पर्याप्त होगा—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥

(३२। १)

अर्थात् 'वे ही अग्नि, आदित्य, वायु और निश्चयरूपसे वे ही चन्द्रमा भी हैं तथा वे ही शुक्र, ब्रह्म, अप् और प्रजापति भी हैं।' इसका निष्कर्ष है कि वैदिक देवताओंके नाम परात्पर ब्रह्म भगवान् श्रीरामके भी बोधक हैं। अतः उन नामोंसे वेदोंमें उनका ही यश वर्णित हुआ है।

यह भी ध्यातव्य है कि ऋक्, यजुः, साम शब्द मन्त्रके वाचक हैं। मात्र मन्त्र ही वेद नहीं हैं। वेद शब्द मन्त्र और ब्राह्मण दोनोंका वाचक है—**'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्'**। ब्राह्मणोंके ही भाग आरण्यक और उपनिषद् हैं। अनेक उपनिषदोंमें विस्तृत श्रीराम-कथाएँ मिलती हैं। इसलिये श्रीरामचरितमानसकी इस उक्तिसे कि चारों वेदोंको श्रीरघुनाथजीके निर्मल यशका वर्णन करते स्वप्नमें भी खेद नहीं होता, आश्चर्य नहीं होना चाहिये। महाराज श्रीदशरथके चारों पुत्र वेदके तत्त्व हैं—**'बेद तत्व नृप तव सुत चारी'** (मानस १। १९८। १)। इसलिये उनका चरित्र वेदोंमें होना ही चाहिये। श्रीरामचरितमानसका **'बंदउँ चारिउ बेद'**—यह सोरठा वेदोंका स्वरूप-स्वभावादि दर्शानेवाला दर्पण है।

गोस्वामीजीके साहित्यमें वेदोंकी महिमा विविध विधियोंसे निरूपित है। उनमें प्रकरणोंके प्रमाणमें प्रायः वेदोंका साक्ष्य दिया गया है। अयोध्यामें रघुवंशशिरोमणि श्रीदशरथ नामक राजा हुए। वे वेदोंमें विख्यात हैं—

अवधपुरीं रघुकुलमनि राऊ। बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ॥

(रा०च०मा० १। १८८। ७)

श्रीरामचरितमानस, विनय-पत्रिका आदि ग्रन्थोंमें सामाजिक मर्यादाओंको वेदके अनुरूप स्थापित करनेका

प्रयत्न है। वहाँ बताया गया है कि वेदबोधित मार्गके अनुसरणसे सकल सुखोंकी प्राप्ति सम्भव है—

जो मारग श्रुति-साधु दिखावै। तेहि पथ चलत सबै सुख पावै॥

(विनय-पत्रिका १३६। १२)

श्रीरामराज्यमें लोग वर्णाश्रमके अनुकूल धर्मोंमें तत्पर हुए सदा वेदमार्गपर चलते थे। परिणामस्वरूप वे सुख पाते थे तथा निर्भय एवं नि:शोक और नीरोग थे—

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग॥

(रा०च०मा० ७। २०)

तर्क-वितर्क करके वेदोंपर दोषारोपण करनेवालोंकी दुर्गति बतायी गयी है—

कल्प कल्प भरि एक एक नरका। परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका॥

(रा०च०मा० ७। १००। ४)

वेद पूर्ण हैं। सभी मतावलम्बी वेद-प्रमाणसे अपने मतोंकी पुष्टि करते हैं—

बुध किसान सर बेद निज मतें खेत सब सींच।

(दोहावली ४६५)

अत: जब वेद साक्षात् परमात्मस्वरूप ही हैं, तब उनके निरतिशय महिमाका गुणगान ही कहाँतक किया जा सकता है?—

अतुलित महिमा बेद की तुलसी किएँ बिचार।

(दोहावली ४६४)

इससे वेदोंकी अतुलित महिमा सिद्ध होती है।

सभी शास्त्र वेदका ही अनुसरण करते हैं

(श्रीश्यामनारायणजी शास्त्री)

समस्त शास्त्र, पुराण, इतिहास, रामायण, गीता और महाभारत आदि जो भी हमारे धर्मग्रन्थ हैं, उनके मूल आधार भगवान् वेद ही हैं। क्योंकि वेदके पश्चात् ही ये सब ग्रन्थ लिखे गये एवं इन ग्रन्थोंमें जो धर्मकी व्याख्या हुई उनके आधार वेद ही हैं—'**वेदोऽखिलो धर्ममूलम्**।' भगवान् वेदकी भाषा सर्वगम्य न होनेके कारण आर्षग्रन्थोंके द्वारा ही वेदार्थ प्रकट किया गया। वेदार्थ-ज्ञापक हमारे धर्मग्रन्थ ये हैं—

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥

(याज्ञ०स्मृ० १। ३)

'पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्राङ्गोंसे युक्त चारों वेद— ये धर्म और विद्याओंके चौदह स्थान हैं।' इसी कारण वेदार्थ निश्चय करनेके लिये इनका अनुशीलन तथा परिशीलन अनिवार्य एवं अपरिहार्य है—

वेदार्थो निश्चेतव्यः स्मृतीतिहासपुराणैः।

वेदार्थका निश्चय स्मृति, इतिहास एवं पुराणोंके द्वारा ही किया जाना चाहिये; क्योंकि इतिहास-पुराणोंका उपबृंहण वेदार्थोकी बोधगम्यताके लिये ही हुआ है—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्॥

(महाभारत, आदिपर्व १। २६७)

वाल्मीकिरामायण, महाभारत, समस्त पुराण, उपपुराण और धर्मशास्त्र आदि आर्षग्रन्थोंमें सर्वत्र ही वेदका अनुसरण किया गया है। यही आर्षग्रन्थोंकी महत्ता है। जिन्होंने वेदोंको नहीं माना, उनका ग्रन्थ अप्रामाण्य ही माना गया—

अतुलित महिमा बेद की तुलसी किएँ बिचार।
जो निंदत निंदित भयो बिदित बुद्ध अवतार॥

(दोहावली ४६४)

वेद अनादि, अपौरुषेय तथा नित्य शाश्वत और त्रैकालिक घटनाओंके दर्पण एवं हमारे पथ-प्रदर्शक हैं, अतएव सनातन सत्य हैं। उपनिषद्का कहना है कि वेद भगवान्के निःश्वासभूत हैं—'**यस्य निःश्वसितं वेदाः**' तथा गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीकी उक्ति है—'**जाकी सहज स्वास श्रुति चारी**'।

वेदकी शाखाओंका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

ऋग्वेदादिविभागेन वेदाश्चत्वार ईरिताः।
तेषां शाखा ह्यनेकाः स्युस्तासूपनिषदस्तथा॥
ऋग्वेदस्य शाखाः स्युरेकविंशतिसंख्यकाः।
नवाधिकं शतं शाखा यजुषो मारुतात्मज॥
सहस्रं संख्यया जाताः शाखाः साम्नः परंतप।
अथर्वणस्य शाखाः स्युः पञ्चाशद् भेदतो हरेः॥
एकैकस्यास्तु शाखाया एकैकोपनिषन्मता।

ये ही वेद भगवान्की इच्छा एवं प्रेरणासे रामायणके रूपमें महर्षि वाल्मीकिजीके श्रीमुखसे प्रकट हुए; क्योंकि भगवान्को जब धराधामपर प्रकट होना होता है तो अपने अवतारकी पृष्ठभूमि वे स्वयं ही बना लेते हैं। यहाँ भगवदवतारके साथ वेदावतार भी कैसे हुआ? यह स्पष्ट किया जा रहा है। अगस्त्य-संहितामें इसका स्पष्ट वर्णन है—

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद् रामायणात्मना॥

वेदोंके द्वारा जानने योग्य भगवान् जब दशरथनन्दनके रूपमें धराधामपर पधारे तो वेदोंने भी प्राचेतस भगवान् वाल्मीकिजीके श्रीमुखसे स्वयं रामायणके रूपमें अवतार लिया। इस कारण भगवान् शंकरजी भगवती पार्वतीजीसे कहते हैं—'देवि! इस प्रकारसे रामायण स्वयं वेद है, इसमें संशय नहीं है'—

तस्माद् रामायणं देवि वेद एव न संशयः।

उस रामायणके परम विशिष्ट पात्रोंका भी वर्णन किन-किन रूपोंमें किया, उसका भी स्पष्ट संकेत कर दिया है—

तासां क्रिया तु कैकेयी सुमित्रोपासनात्मिका।
ज्ञानशक्तिश्च कौसल्या वेदो दशरथो नृपः॥
क्रियायां कलहो दृष्टो दृष्टा प्रीतिरुपासने।
ज्ञानेनात्मसुखं नित्यं दृष्टं निर्हेतुनिर्मलम्॥

(शिवसंहिता १८। ४६-४७)

'वेदोंकी क्रिया कैकेयी, उपासना सुमित्रा तथा ज्ञानशक्ति कौसल्या हैं एवं महाराज श्रीदशरथजी साक्षात् वेद हैं। क्रियामें कलह, उपासनामें प्रीति, निर्हेतुक ज्ञानमें निर्मल आत्मसुख देखा—पाया गया। इसी क्रमसे रामायणका स्वरूप भी है। क्रिया महारानी कैकेयी ही श्रीरामावतारके समस्त प्रयोजनको सिद्ध करानेके लिये महाराज दशरथजीसे हठपूर्वक रामको वनवास दिलाती हैं; क्योंकि ये सभी कार्य क्रियाके ही हैं। सुमित्रा उपासना एवं प्रेम हैं।' वे लक्ष्मणजीसे कहती हैं—

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्॥

(वा० रा० २। ४०। ९)

ज्ञानशक्ति कौसल्या हैं। समस्त परिस्थितियोंके बिगड़ जानेपर भी वे स्पष्ट आत्माके वास्तविक स्वरूपको पहचान कर परम शान्त, दान्त एवं गम्भीर-मुद्रामें किसीपर भी दोषारोपण न करके स्वात्माराम हैं, क्योंकि—

ब्रह्मणा निर्मितं यच्च शतकोटिप्रविस्तरम्।
वाल्मीकिना च यत् प्रोक्तं रामोपाख्यानमुत्तमम्॥

(स्कन्दपुराण)

इसीके आधारपर यह भी वर्णन किया गया कि साक्षात् ब्रह्माजीने कहा—'महर्षे! मेरी ही प्रेरणासे तुम्हारे मुखसे '**मा निषाद प्रतिष्ठां०**' इस श्लोकके रूपमें रामायण ग्रन्थ वेदके रूपमें प्रकट हुआ। तुमने महर्षि नारदजीके मुखसे जैसा श्रवण किया है, वैसा ही वर्णन करो। आगेका सारा चरित तुम्हारी ऋतम्भरा प्रज्ञाके द्वारा तुम्हें स्वयं ही ज्ञात हो जायगा। तुम्हारी कोई भी वाणी इस काव्यमें मिथ्या नहीं होगी।' ब्रह्माजीने कहा—

तच्चाप्यविदितं सर्वं विदितं ते भविष्यति।
न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति॥

(वा० रा० १। २। ३५)

इस प्रकार ब्रह्माजीसे आदेश पाकर महर्षि वाल्मीकिजीने अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञाद्वारा समस्त रामचरितका जैसा साक्षात्कार किया, वैसा ही वर्णन कर दिया है।

स्कन्दपुराणमें तो ऐसा भी वर्णन किया गया है कि—

वाल्मीकिरभवद् ब्रह्मा वाणी वक्तृत्वरूपिणी।
चकार रामचरितं पावनं चरितव्रतः॥

'स्वयं ब्रह्मा ही वाल्मीकि हुए, सरस्वती ही उनकी वाणी—वक्ता बनकर स्फुटित हुई, जिससे वेदरूप श्रीरामायणकी रचना सम्पन्न हुई।'

फिर भगवान् शंकर पार्वतीजीसे कहते हैं—

वाल्मीकिस्तुलसीदासः कलौ देवि भविष्यति।
रामचन्द्रकथा साध्वी भाषारूपां करिष्यति॥

(शिवसंहिता)

पुनः—

वाल्मीकिस्तुलसीदासो भविष्यति कलौ युगे।
शिवेनात्र कृतो ग्रन्थः पार्वतीं प्रतिबोधितुम्॥
रामभक्तिप्रवाहार्थं भाषाकाव्यं करिष्यति।
रामायणं मानसाख्यं सर्वसिद्धिकरं नृणाम्॥

(ब्रह्मरामायण)

अर्थात् 'देवि! वाल्मीकिजीने वेदरूप जो रामायण लिखी, संस्कृतमें होनेके कारण उससे भविष्यमें समस्त समाज लाभान्वित नहीं हो पायेगा। इसलिये स्वयं वाल्मीकिजीने कलियुगी प्राणियोंका कल्याण करानेके लिये श्रीरामचरितमानसके रूपमें तुलसीदास बनकर उसी वेदरूप रामायणकी रचना 'भाषा'में की। जिससे आबाल-वृद्ध, नर-नारी, जन-सामान्यसे लेकर सुयोग्य विद्वान्तक लाभ उठा सकें।'—

मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहिं मग चलत सुगम मोहि भाई॥
भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरें मन प्रबोध जेहिं होई॥

नाभादासजीने भी अपने भक्तमाल नामक ग्रन्थमें इसीको पुष्ट किया है—

कलि कुटिल जीव निस्तार हित बाल्मीकि तुलसी भयो।

इस प्रकार ब्रह्माजी ही प्राचेतस मुनि हुए और उनके द्वारा लिखी रामायण श्रीमद्वाल्मीकिरामायण है। जिसके सम्बन्धमें स्कन्दपुराणमें कहा गया है—

रामायणमादिकाव्यं सर्ववेदार्थसम्मतम्।
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वदुःखनिवर्हणम्॥

महर्षि वाल्मीकिकृत आदिकाव्य रामायण साक्षात् वेदरूप ही है, अतएव परवर्ती समस्त रामायण-लेखकोंने अपनी-अपनी भाषा एवं परम्परानुसार इसी

वेदरूप रामायणका अनुकरण एवं अनुसरण किया है। वेदव्यासजीकी घोषणा है—

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।

इसीलिये कहा गया—'**व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम्।**' फिर जितने शास्त्र-पुराणादि लिखे गये, तत्तद् ग्रन्थोंके उन सभी लेखकोंने श्रीव्यास एवं वाल्मीकिजीकी ही रचनाओंको आधार मानकर अपने-अपने ग्रन्थोंको लिखा है। श्रीमद्भागवतके वेदान्त-निरूपण एवं वर्षा, शरद्-वर्णनके प्रसंगको लेकर गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भी कहीं-कहीं तो अक्षरशः तथा अन्यत्र आधाररूपमें आलंकारिक वर्णन किया है। श्रीमद्भगवद्गीता तो सभी उपनिषदोंका सार ही है, उसके श्लोक (१८। ६६)-का अनुवाद गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने ज्यों-का-त्यों किया है, जैसे—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

गोस्वामीजीका अनुवाद—

नर बिबिध कर्म अधर्म बहु मत सोकप्रद सब त्यागहू।
बिस्वास करि कह दास तुलसी राम पद अनुरागहू॥

पुनः—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

(गीता ९। ३२)

गोस्वामीजीका अनुवाद—

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥

उपनिषद्में—

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे-
ऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्तः
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥

(मुण्डकोपनिषद् ३। २। ८)

गोस्वामीजीका अनुवाद—

सरिता जल जलनिधि महुँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरिपाई॥

गीता (१५। ४)-में जैसे '**यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः**' कहा गया है, इसी प्रकार वेद एवं वेदार्थका ही अनुकरण, अनुवर्णन अद्यावधि सभीने अपनी-अपनी भाषा एवं परम्परानुसार किया है। भगवान् वेदके अतिरिक्त कोई कहेगा भी क्या? अतः—

वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते॥

गोस्वामीजी—

जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना॥

—इस प्रकार वेद हमारे आर्ष मूल, अपौरुषेय, अनादि, अनन्त, धर्ममूल, सर्वाधार, साक्षात् नारायणरूप, सर्वगुणगणसम्पन्न, सर्वाभीष्टदायक, सर्वारिष्टनिवारक एवं सर्वज्ञान-विज्ञान-प्रदाता हैं और सभी वेद भगवान्का ही प्रतिपादन करते हैं। इसीलिये शास्त्रका वचन है—

आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य वै पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा॥

अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि समस्त शास्त्र वेदका ही अनुसरण करते हैं। यह सर्वविध प्रमाणित, स्वतःसिद्ध एवं शाश्वत सत्य है।

येन देवाः स्वरारुरुहुर्हित्वा शरीरममृतस्य नाभिम्।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं घर्मस्य व्रतेन तपसा यशस्यवः॥

(अथर्व० ४। ११। ६)

जिस परमात्माकी कृपासे विद्वान् लोग अपना शरीर त्यागकर अमृतके केन्द्ररूप मोक्षको प्राप्त हुए हैं, उस प्रकाशपूर्ण परमात्माके व्रत और तपस्यासे यशके इच्छुक हम उस पुण्यलोकको (मोक्षको) प्राप्त करेंगे।

महर्षि वाल्मीकि एवं उनके रामायणपर वेदोंका प्रभाव

प्रायः सभी व्याख्याताओंने अपनी रामायण-व्याख्याके प्रारम्भमें एक बड़ा सुन्दर मनोहारी श्लोक लिखा है, जो इस प्रकार है—

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद् रामायणात्मना॥

भाव यह है कि परमात्मा वेदवेद्य है अर्थात् केवल वेदोंके द्वारा ही जाना जा सकता है। जब वह परब्रह्म परमेश्वर लोककल्याणके लिये दशरथनन्दन रघुनन्दन आनन्दकन्द श्रीरामचन्द्रके रूपमें अवतीर्ण हुआ, तब सभी वेद भी प्रचेतामुनिके पुत्र महर्षि वाल्मीकिके मुखसे श्रीमद्रामायणके रूपमें अवतीर्ण हुए। तात्पर्य यह कि श्रीमद्रामायण विशुद्ध वेदार्थरूपमें ही लोककल्याणके लिये प्रकट हुआ है। इन्हीं कारणोंसे मूल रूपमें सौ करोड़ श्लोकोंमें उपनिबद्ध श्रीमद्रामायणका एक-एक अक्षर सभी महापातकों एवं उपपातकोंका प्रशमन करनेवाला और परम एवं चरम पुण्यका उत्पादक बताया गया है—

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्॥

वेदोंका अर्थ गूढ है तथा रामायणके भाव अत्यन्त सरल हैं। अतः रामायणके द्वारा ही वेदार्थ जाना जा सकता है।

महर्षि वाल्मीकिने इस रहस्यका वर्णन अपनी रामायणमें बार-बार किया है। मूल रामायणकी फलश्रुतिमें वे कहते हैं—

इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम्।
यः पठेद् रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

(वा०रा० १। १। ९८)

'वेदोंके समान पवित्र एवं पापनाशक तथा पुण्यमय इस रामचरितको जो पढ़ेगा, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जायगा।'

अर्थात् यह सर्वाधिक परम पवित्र, सभी पापोंका नाश करनेवाला, अपार पुण्य प्रदान करनेवाला तथा सभी वेदोंके तुल्य है। इसे जो पढ़ता है, वह सभी पाप-तापोंसे मुक्त हो जाता है।

भगवान् श्रीराम चारों भाइयोंके साथ महर्षि वसिष्ठके आश्रममें जाकर वेदाध्ययन करते हैं। राजर्षि जनकके गुरु पुरोहित याज्ञवल्क्य, गौतम, शतानन्द आदि सभी वेदोंमें निष्णात थे। यही नहीं, स्वयं रावण भी वेदोंका बड़ा भारी विद्वान् पण्डित था। उसके भाष्योंका प्रभाव सायण, उद्गीथ, वेंकट, माधव तथा मध्वादिके भाष्योंपर प्रत्यक्ष दीखता है। उसके यहाँ अनेक वेदपाठी विद्वान् ब्राह्मण थे। हनुमान्‌जी जब अशोकवाटिकामें सीताजीको ढूँढ़ते हुए पहुँचे और अशोकवृक्षपर छिपकर बैठे, तब आधी रातके बाद उन्हें लङ्कानिवासी वेदपाठी विद्वानोंकी वेदध्वनि सुनायी पड़ी—

षडङ्गवेदविदुषां क्रतुप्रवरयाजिनाम्।
शुश्राव ब्रह्मघोषान् स विरात्रे ब्रह्मरक्षसाम्॥

(वा०रा० ५। १८। २)

रातके उस पिछले पहरमें छहों अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंके विद्वान् तथा श्रेष्ठ यज्ञोंद्वारा यजन करनेवाले ब्रह्म-राक्षसोंके घरमें वेदपाठकी ध्वनि होने लगी, जिसे हनुमान्‌जीने सुना।

अयोध्यामें तो वेदज्ञ ब्राह्मणोंका बाहुल्य ही था। जब भरतजी रामजीको वापस करने चित्रकूट जाते हैं तो अनेक वेदपाठी शिक्षक-छात्र भरतजीके साथ चलते हैं। महर्षि वाल्मीकिने लिखा है कि कठ, कण्व, कपिष्ठल आदि शाखाओंके शिक्षक, याज्ञिक भरतजीके साथ चल रहे थे और भरतजीने उनकी रुचिके अनुसार जलपान तथा भोजनादिकी पूरी व्यवस्था कर रखी थी।

इसी प्रकार वनवास-कालमें भगवान् श्रीरामजीकी आगे महर्षि अगस्त्यसे भेंट होती है। अगस्त्यजीका ऋग्वेदमें 'आगस्त्य-मण्डल' बहुत प्रसिद्ध है। अगस्त्यकी पत्नी लोपामुद्रा वेदके कई सूक्तोंकी द्रष्टा हैं।

हनुमान्‌जी वेदोंके प्रकाण्ड विद्वान्—निष्णात पण्डित थे। जब वे किष्किन्धामें भगवान् श्रीरामसे बातें करते हैं, तब श्रीरामजी लक्ष्मणजीसे कहते हैं—

तमभ्यभाष सौमित्रे सुग्रीवसचिवं कपिम्।
वाक्यज्ञं मधुरैर्वाक्यैः स्नेहयुक्तमरिंदमम्॥
नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्॥

नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्॥
न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा।
अन्येष्वपि च सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचित्॥

(वा०रा० ४। ३। २७—३०)

लक्ष्मण! इन शत्रुदमन सुग्रीवसचिव कपिवर हनुमान्से, जो बातके मर्मको समझनेवाले हैं, तुम स्नेहपूर्वक मीठी वाणीमें बातचीत करो। जिसे ऋग्वेदकी शिक्षा नहीं मिली, जिसने यजुर्वेदका अभ्यास नहीं किया तथा जो सामवेदका विद्वान् नहीं है, वह इस प्रकार सुन्दर भाषामें वार्तालाप नहीं कर सकता। निश्चय ही इन्होंने समूचे व्याकरणका कई बार स्वाध्याय किया है, क्योंकि बहुत-सी बातें बोल जानेपर भी इनके मुँहसे कोई अशुद्धि नहीं निकली। सम्भाषणके समय इनके मुख, नेत्र, ललाट, भौंह तथा अन्य सब अङ्गोंसे भी कोई दोष प्रकट हुआ हो, ऐसा कहीं ज्ञात नहीं हुआ।

भाव यह है कि जबतक कोई अनेक व्याकरणोंका ज्ञाता नहीं होगा, वेदज्ञ नहीं होगा, तबतक इतना सुन्दर, शान्त एवं प्रसन्न-चित्तसे शुद्धातिशुद्ध सम्भाषण नहीं कर सकेगा।

हनुमान्जी जब लङ्का जाते हैं और रावणसे बातचीत करते हैं तो वेदोंके सारभूत ज्ञानका निरूपण करते हैं। वे रावणसे कहते हैं कि तुम पुलस्त्य-कुलमें उत्पन्न हुए हो, वेदज्ञ हो, तुमने तपस्या की है और देवलोकतकको भी जीत लिया है, इसलिये सावधान हो जाओ। तुमने वेदाध्ययन और धर्मका फल तो पा लिया, अब वेदविरुद्ध दुष्कर्मोंका परिणाम भी तुम्हारे सामने उपस्थित दीखता है—

प्राप्तं धर्मफलं तावद् भवता नात्र संशयः।
फलमस्याप्यधर्मस्य क्षिप्रमेव प्रपत्स्यसे॥
ब्रह्मा स्वयम्भूश्चतुराननो वा
रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा।
इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा
स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य॥

(वा०रा० ५। ५१। २९, ४४)

तुमने पहले जो धर्म किया था, उसका पूरा-पूरा फल तो यहाँ पा लिया, अब इस सीताहरणरूपी अधर्मका फल भी तुम्हें शीघ्र ही मिलेगा। चार मुखोंवाले स्वयम्भू ब्रह्मा, तीन नेत्रोंवाले त्रिपुरनाशक रुद्र अथवा देवताओंके स्वामी महान् ऐश्वर्यशाली इन्द्र भी समराङ्गणमें श्रीरघुनाथजीके सामने नहीं ठहर सकते।

अर्थात् जिनके तुम भक्त हो, वे त्रिनेत्रधारी त्रिशूलपाणि भगवान् शंकर अथवा चार मुखवाले ब्रह्मा या समस्त देवताओंके स्वामी इन्द्र—सभी मिलकर भी रामके वध्य शत्रुकी रक्षा नहीं कर सकते।

इसी प्रकार हनुमान्जीने रावणके समक्ष तर्कोंसे—युक्तियोंसे रामको परब्रह्म परमात्मा और परब्रह्म सिद्ध किया। वे कहते हैं—

सत्यं राक्षसराजेन्द्र शृणुष्व वचनं मम।
रामदासस्य दूतस्य वानरस्य विशेषतः॥
सर्वाँल्लोकान् सुसंहृत्य सभूतान् सचराचरान्।
पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः॥

(वा० रा० ५। ५१। ३८-३९)

अर्थात् हे राक्षसराज रावण! मेरी सच्ची बात सुनो—महायशस्वी श्रीरामचन्द्रजी चराचर प्राणियोंसहित सम्पूर्ण लोकोंका संहार करके, फिर उनका नये सिरेसे निर्माण करनेकी शक्ति रखते हैं।

विभीषणको वेदका तत्त्वज्ञान था। उन्होंने रावणको वेदज्ञानके आधारपर परामर्श दिया, किंतु उसने उनकी एक भी नहीं सुनी। इसलिये वेदको जानते हुए भी वेदके विरुद्ध वह चल रहा था। गोस्वामीजीने ठीक लिखा है—

बेद बिरुद्ध मही, मुनि, साधु ससोक किए सुरलोकु उजारो।
और कहा कहौं, तीय हरी, तबहूँ करुनाकर कोपु न धारो॥
सेवक-छोह तें छाड़ी छमा, तुलसी लख्यो राम! सुभाउ तिहारो।
तौलौं न दापु दल्यौ दसकंधर, जौलौं बिभीषन लातु न मारो॥

(कवितावली उ० ३)

विभीषण सच्चे वेदज्ञ थे, इसलिये वे वेदतत्त्व-रामको पहचान पाये। तुलसीदासने वसिष्ठके मुखसे रामके जन्मते ही यह बात कहलायी—

धरे नाम गुर हृदयँ बिचारी। बेद तत्व नृप तव सुत चारी॥
मुनि धन जन सरबस सिव प्राना। बाल केलि रस तेहिं सुख माना॥

(रा०च०मा० १। १९८। १-२)

भाव यह है कि वसिष्ठजी महाराज दशरथसे कहते हैं कि महाराज! ये आनन्दकन्द रघुनन्दन साक्षात् वेदपुरुष—वेदतत्त्व हैं और अपनी लेशमात्र शक्तिसे सारे संसारको प्रकाशित करते हैं। समस्त मन, बुद्धि, हृदय,

इन्द्रिय और जीवात्माको भी प्रकाशित करते हैं—

जो आनंद सिंधु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी॥
सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा॥

(रा०च०मा० १। १९७। ५-६)

बिषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥

(रा०च०मा० १। ११७। ५-६)

अर्थात् समस्त प्राणियोंके विषय, इन्द्रिय, उनके स्वामी देवता एक-से-एक विशिष्ट चैतन्य कहे गये हैं, किंतु सबको प्रकाशित करनेवाली शक्ति एक ही है, जो अनादि ब्रह्म वेदसार श्रीरामके नामसे विज्ञेय है। स्वयं भगवान् रामने रावणको देखकर कहा था—यह रावण अत्यन्त तेजस्वी है, वेदोंका ज्ञाता है, किंतु इसका आचरण वेदविरुद्ध हो गया, अन्यथा यह शाश्वत कालके लिये तीनों लोकोंका स्वामी हो सकता था। महर्षि वाल्मीकिद्वारा श्रीमद्रामायणमें भगवान्के भाव इन शब्दोंमें निरूपित हुए हैं—

यद्यधर्मो न बलवान् स्यादयं राक्षसेश्वरः।
स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता॥

(वा० रा० युद्धकाण्ड)

वाल्मीकिरामायणकी समाप्तिके समय प्रार्थनारूपमें कहा गया है कि सम्पूर्ण वेदोंके पाठका जितना फल होता है, उतना ही फल इसके पाठसे होता है। इससे देवताओंकी सारी शक्तियाँ बढ़ जाती हैं। पृथ्वीपर ठीकसे वर्षा होती है। राजाओंका शासन निर्विघ्न चलता है। गौ-ब्राह्मण आदि सभी खूब प्रसन्न रहते हैं। सम्पूर्ण विश्वमें किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता और भगवान् विष्णुका बल बढ़ता जाता है—

काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः॥

इस प्रकार संक्षेपमें यह समझाया गया है कि बिना रामायणके जाने वेदका ठीक ज्ञान नहीं हो सकता। जो रामायणको नहीं जानता, वह वेदके अर्थको ठीक नहीं समझ सकता। इसीलिये अल्पश्रुतोंसे वेद भयभीत रहता है, कहता है कि यह अपनी अल्पश्रुततासे मेरे ऊपर प्रहार कर देगा—

बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।

(महाभारत, आदिपर्व १। २६८)

वाल्मीकिजीने जब प्रथम श्लोकबद्ध लौकिक साहित्यकी रचना की, तब ब्रह्माजी उनकी मन:स्थिति समझकर हँसने लगे और मुनिवर वाल्मीकिसे इस प्रकार बोले—'ब्रह्मन्! तुम्हारे मुँहसे निकला हुआ यह छन्दोबद्ध वाक्य श्लोकरूप ही होगा। इस विषयमें तुम्हें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। मेरे संकल्प अथवा मेरी प्रेरणासे ही तुम्हारे मुँहसे ऐसी वाणी निकली है। इसलिये तुम श्रीरामचन्द्रजीकी परम पवित्र एवं मनोरम कथाको श्लोकबद्ध करके लिखो। वेदार्थयुक्त रामचरितका निर्माण करो'—

तमुवाच ततो ब्रह्मा प्रहसन् मुनिपुङ्गवम्॥
श्लोक एवास्त्वयं बद्धो नात्र कार्या विचारणा।
मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयं सरस्वती॥
कुरु रामकथां पुण्यां श्लोकबद्धां मनोरमाम्।

आगे ब्रह्माजीने पुनः कहा—जबतक पृथ्वी, पर्वत और समुद्र रहेंगे, तुम्हारी रामायण भी रहेगी और इसके आधारपर अनेक रामायणोंकी रचना होगी तथा तुम्हारी तीनों लोकोंमें अबाधगति होगी और रामायणरूपी तुम्हारी यह वाणी समस्त काव्य, इतिहास, पुराणोंका आधारभूत बीजमन्त्र बनी रहेगी।

कहा जाता है कि सभी ब्राह्मण बालकोंको सर्वप्रथम महर्षि वाल्मीकिके मुखसे निकला हुआ यही श्लोक पढ़ाया जाता है, जो इस प्रकार है—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

(वा० रा० १। २। १५)

गोविन्दराज, माधवगोविन्द, नागेशभट्ट, कतक, तीर्थ और शिवसहाय तथा राजा भोज आदि कवियोंने इस श्लोकके सैकड़ों अर्थ किये हैं। राजा भोजने इसीके आधारपर चम्पू रामायणका निर्माण किया है। सबसे अधिक अर्थ गोविन्दराजने किया है।

इस प्रकार अत्यन्त संक्षेपमें वेदसारभूत श्रीमद्रामायणका परिचय दिया गया है, जो कि वैदिक साहित्यसे भिन्न सम्पूर्ण विश्वके लौकिक साहित्यका प्रथम ग्रन्थ है। सारे संसारके ग्रन्थ इसीसे प्रकाशित होते हैं। प्रथम कवि संसारमें वाल्मीकि ही हुए हैं, जैसा कि प्रसिद्ध है—

जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभवद् ध्वनिः।

तुलसी-साहित्य और वेद

(डॉ० श्रीशुकदेवजी राय, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, साहित्यरत्न)

तुलसीदासजीकी रचनाएँ समन्वय-स्वरूप हैं। जिस प्रकार इनके व्यक्तित्वमें भक्त और कविका मणिकाञ्चन योग है, उसी प्रकार इनके साहित्यमें विभिन्न तत्त्वोंका समन्वय भी। इनका 'श्रीरामचरितमानस' समन्वयकी एक विराट् चेष्टा है और उसी प्रकार इनकी अन्य रचनाएँ भी समन्वय-गुण सापेक्ष हैं—इस बातकी स्वीकारोक्ति स्वयं कविकी इस पंक्तिसे हो जाती है—

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।

सम्भवतः यही कारण है कि रचनाएँ कविके शब्दोंमें '**स्वान्तःसुखाय**' होते हुए भी '**बहुजन-हिताय**' हैं और इसीलिये उच्चकोटिके साहित्यमें मान्य है—

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥

(रा० च० मा० १। १४। ९)

अर्थात् 'कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही उत्तम है, जो गङ्गाजीकी तरह सबका हित करनेवाली हो।' यही सर्वहितकी भावना 'सहित' शब्दके अपत्यरूप साहित्य-शब्दके यथार्थका द्योतन करती है।

मानसमें लोक और धर्मके क्षेत्रमें, ज्ञान और कर्मके क्षेत्रमें, नाम और रूपके क्षेत्रमें, साकार और निराकारके क्षेत्रमें, काव्यके क्षेत्रमें, कथा और काव्यकी परिधिमें तथा अन्य अनेक क्षेत्रोंमें समन्वयका सफल प्रयास स्पष्टत: परिलक्षित है। उसी क्रममें लोक और वेदका समन्वय सर्वथा परिदर्शनीय है।

वेद क्या है? इसका परिशीलन इस प्रसंगमें आवश्यक-सा प्रतीत होता है।

'विद्' धातुसे **'घञ्'** प्रत्यय लगाकर बननेवाला **'वेद'** शब्द ज्ञानका प्रतीक है। ईश्वर ज्ञानका सम्पूर्ण रूप है। जीवका लक्ष्य मोक्षकी प्राप्ति है। इसके तीन साधन माने गये हैं—(१) ज्ञान, (२) कर्म और (३) आराधना। ज्ञानका अन्तिम लक्ष्य ईश्वरके स्वरूपको जानना है। ईश्वर जीवको इस विश्वमें कर्मका क्षेत्र देता है, कर्म करनेके लिये प्रेरित करता है। जिस प्रकार ज्ञानका अन्तिम ध्येय ईश्वरको जान लेता है, उसी प्रकार कर्मयात्राका चरम लक्ष्य ईश्वरका साक्षात् करना अथवा उसकी प्राप्ति है।

हमारी इच्छाकी पूर्ति भोग है। ज्ञान और कर्मकी मीमांसा तो हम केवल मनुष्य-शरीरमें ही कर सकते हैं, परंतु योगके सिद्धान्तोंको चेतन जगत्के स्वाध्यायसे समझ सकते हैं। मनुष्य-जीवनका लक्ष्य मोक्ष है और वहाँतक पहुँचनेके लिये ज्ञान, कर्म और उपासना साधना-त्रयी है। वेदत्रयीमें इनका वर्णन है। ईश्वरके साक्षात्कारके सम्बन्धमें जो मान्य धारणाएँ हैं, उससे तुलसीदासजी पूर्णत: सहमत नहीं लगते। इनके 'श्रीराम' परम ब्रह्म परमेश्वर हैं। वे साधन-साध्य नहीं हैं, अपितु कृपा-साध्य हैं—

तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन॥
यह गुन साधन तें नहिं होई। तुम्हरी कृपाँ पाव कोइ कोई॥
(रा० च० मा० ४।२१।६)

प्रभुके गुणोंका गान करनेवाले वेदोंने उनके कर्मको समझ पानेके सम्बन्धमें केवल 'नेति-नेति' कहा है—

सारद सेस महेस बिधि आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान॥
(रा० च० मा० १।१२)

तुलसीदासजीके काव्यमें लोक-मङ्गलकी भावना है—लोकाचार और वेदाचारको साथ-साथ लेकर चलनेका स्तुत्य प्रयास है। वेद-वर्णित मार्गके अनुगमनको ही इन्होंने इस कामके लिये श्रेय माना है, पर कहीं भी लोकाचारकी उपेक्षा नहीं है। अत: इनकी रचनाओंमें लोकाचार और वेदाचार एक-दूसरेके अनुगामी-जैसे लगते हैं। पता ही नहीं चलता कि लोकाचारका अनुगमन वेद कर रहा है या वेदका अनुगमन लोकाचार। पुरोहित वेद-मन्त्र भले भूल जायँ, क्रियामें व्यतिक्रम भले ही हो जाय, पर लोकाचारमें प्रवीण नारियाँ अपने मङ्गलगीतोंके माध्यमसे सही मार्गका दिग्दर्शन अवश्य करा देती हैं।

वेदको तुलसीदासजीने अपने काव्यमें बहुत विस्तृत अर्थमें लिया है। उसके अन्तर्गत 'वेदत्रयी' के अतिरिक्त 'गृह्यसूत्र'-तक समाहित किये गये हैं। तुलसी-काव्यमें 'वर्णाश्रम-धर्म' और जीवनको परिवर्धित और परिष्कृत करके मानव-मूल्योंके साथ जोड़नेवाले संस्कारोंका यथास्थान सटीक वर्णन मिलता है। जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्तके लगभग सारे संस्कार तुलसीकाव्यमें उल्लिखित हैं।

रामजन्मके समय जातकर्मका वर्णन इस प्रकार है—***'नंदीमुख सराध करि जातकरम सब कीन्ह'*** (रा० च० मा० १।१९३)। कुछ बड़े होनेपर फिर रामके यज्ञोपवीतका वर्णन मानसमें मिलता है। ***'भए कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥'*** (रा० च० मा० १।२०४।३)। इसके बाद वेदारम्भ होता है—***'गुरगृहँ गए पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई॥'*** (रा० च० मा० १।२०४।४)।

विवाहकी भी चर्चा इसी प्रसंगमें मिलती है। जनकपुर धनुष-यज्ञशालामें रामके विजयके उपरान्त जो क्रिया होती है, उसमें वेदके योगका वर्णन इस प्रकार है—

जहँ तहँ बिप्र बेदधुनि करहीं। बंदी बिरिदावलि उच्चरहीं॥
(रा० च० मा० १।२६५।४)

धनुषभंगके उपरान्त मुनिने जो आदेश दिया है, उसमें वेदाचार और लोकाचारको मिलाकर चलनेकी कैसी अनुपम योजना है—

तदपि जाइ तुम्ह करहु अब जथा बंस ब्यवहारु।
बूझि बिप्र कुलबृद्ध गुर बेद बिदित आचारु॥
(रा० च० मा० १।२८६)

ग्रामीण गीत और वेद-मन्त्रके साथ-साथ चलनेका उपक्रम कितना मनोहर है—

(क) 'सुभग सुआसिनि गावहिं गीता। करहिं बेद धुनि बिप्र पुनीता॥'

(रा० च० मा० १।३१३।४)

(ख) बेद बिहित अरु कुल आचारू। कीन्ह भली बिधि सब ब्यवहारू॥

(रा० च० मा० १।३१९।२)

विवाहकी विधियोंमें वैदिक रीति और मन्त्रोंकी प्रधानताको इन शब्दोंमें स्वीकारा गया है—

बिप्र बेष धरि बेद सब कहि बिबाह बिधि देहिं॥

(रा० च० मा० १।३२३)

विवाहके समय स्वस्तिवाचनका कितना सुन्दर वैदिक विधान है—

पढ़हिं बेद मुनि मंगल बानी। गगन सुमन झरि अवसरु जानी॥

(रा० च० मा० १।३२४।७)

विवाहकी सारी प्रक्रियाको पूरी करनेमें लोक और वेद दोनों रीतियोंका कैसा मिलान है—

जो बसिष्ट अनुसासन दीन्ही। लोक बेद बिधि सादर कीन्ही॥

(रा० च० मा० १।३५२।१)

तुलसीके श्रीराम स्वयं 'श्रुति सेतु पालक हैं।' वे लोकमें आकर भी वेदको कैसे भुला सकते हैं? *'श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस०।'* राज्याभिषेकके समय भी लोक और वेदके निर्देशनको कविने ध्यानमें रखा है—

लोक बेद संमत सबु कहई। जेहि पितु देइ राजु सो लहई॥

(रा० च० मा० २।२०७।३)

भरतके परितोषके लिये जो कुछ कहा गया है, उसमें लोक और वेदके सम्मिलित गतिका आभास है—

बेद बिदित संमत सबही का। जेहि पितु देइ सो पावइ टीका॥

(रा० च० मा० २।१७५।३)

संस्कारोंमें अन्त्येष्टि अन्तिम संस्कार है। यह वेद-विहित है। उसका वर्णन भी महाराज दशरथकी अन्त्येष्टि-क्रियाके समय मिलता है—

(क) सरजु तीर रचि चिता बनाई। जनु सुरपुर सोपान सुहाई॥
एहि बिधि दाह क्रिया सब कीन्हीं। बिधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्ही॥

(रा० च० मा० २।१७०।४-५)

(ख) नृपतनु बेद बिदित अन्हवावा। परम बिचित्र बिमानु बनावा॥
(ग) सोधि सुमृति सब बेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात बिधाना॥

(रा० च० मा० २।१७०।१, ६)

वेदकी अत्यधिक महत्ताको कविने लोक-मङ्गलके लिये स्वीकारा है और उसकी उपेक्षाको अहितकारी कहा है—

गुर श्रुति संमत धरम फलु पाइअ बिनहिं कलेस।
हठ बस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस॥

(रा० च० मा० २।६१)

श्रीरामचरितमानसकी भाँति ही तुलसीकी अन्य छोटी-बड़ी रचनाएँ इस मधु-मङ्गल योगसे खाली नहीं हैं। विनय-पत्रिकामें भी वेदकी चर्चा है—*'बेद-पुरान प्रगट जस जागै। तुलसी राम-भगति बर माँगै॥'* (पद २) शिवके प्रार्थनामें वेद-चर्चा इस प्रकार है—

बेद-पुरान कहत उदार हर। हमरि बेर कस भयेहु कृपिनतर॥

(पद ७)

लोक और वेदका समन्वय श्रीरघुनाथके चरित्रमें दर्शाया गया है—*'लोक बेद बिदित बड़ो न रघुनाथ सों।'*

इसी प्रकार आत्म-निवेदनमें वर्णित ये पंक्तियाँ उसी प्रकार महत्त्वपूर्ण हैं—

श्रुति पुरान सबको मत यह सतसंग सुदृढ़ धरिये।

(वि० पद १८६)

ग्यान बिराग भगति साधन कछु सपनेहुँ नाथ! न मेरें॥

(विनय-पत्रिका, पद १८७)

अपनी छोटी रचना 'वैराग्य-संदीपनी' में भी कविने एक स्थानपर वेदको इसी क्रममें जोड़ा है—

तुलसी बेद-पुरान-मत पूरब सास्त्र बिचार।

(वै० स०, पद० ७)

तुलसीदासजीकी सबसे छोटी दो रचनाएँ हैं—'जानकी-मङ्गल एवं पार्वतीमङ्गल।' इनमें लोकाचार और वेदाचारका संघटन दिखाया गया है। इन रचनाओंकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आर्षवाक्योंको—वेदवाक्योंको नारीकण्ठसे ध्वनित करनेका प्रयास किया गया है। जो आजतक अनवरतरूपसे जीवित है। एक प्रकारसे ये लोकगीतोंमें उतर आये हैं, जिन्हें नारीकण्ठने अपनेमें

समाहित कर लिया है। जैसे—'*लोक बेद बिधि कीन्ह लीन्ह जल कुस कर।*' (पा० म० १३०)

कुल बिबहार बेद बिधि चाहिय जहँ जस।

(जा० म० १३९)

'कवितावली' में भी वेद और लोकके इस महायोगको घटित करनेका प्रयास मिलता है—

निगमागम-ग्यान, पुरान पढ़ै, तपसानलमें जुगपुंज जरै।

(उत्तर० ५५)

'दोहावली' का यह दोहा इस प्रसंगमें कितना मार्मिक लगता है—

श्रुति संमत हरि भगति पथ संजुत बिरति बिबेक।
तेहि परिहरहिं बिमोह बस कल्पहिं पंथ अनेक॥

(५५५)

'गीतावली' में तुलसीदासजीने लोकमें वैदिक क्रियाओंका मेल स्थान-स्थानपर दिखाया है, जिनका अपना महत्त्व है—

क—कीन्हि बेदबिधि लोकरीति नृप, मंदिर परम हुलास।

(पद बाल० २)

ख—बैदिक बिधान अनेक लौकिक आचरत सुनि जानिकै।

(पद बाल० ५)

ग—लोक-बेद-सनेह पालत पल कृपालहि जाहिं॥

(पद उत्तर० २६)

इस प्रकार तुलसीदासजीने अपनी छोटी-बड़ी रचनाओंमें लोक और वेद सम्मिलित स्वरूपको उपस्थापित करनेका और उसकी उपादेयता सिद्ध करनेका प्रयास किया है। सचमुच तुलसीका काव्य लोकमें वेद और वेदमें लोकका प्रतिबिम्ब है। उपसंहार-स्वरूप तुलसीका साहित्य इसीका उद्घोष करता है कि चारों वेद भगवान् श्रीरामके विशद यशका वर्णन करते हुए स्वप्नमें भी तृप्त नहीं होते—

बंदउँ चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस।
जिन्हहि न सपनेहुँ खेद बरनत रघुबर बिसद जसु॥